देव-शास्त्र-गुरु पूजा

(रचयिता-आचार्यश्री विमर्शसागर जी महाराज)

हे आत्मज्ञ! सर्वज्ञ प्रभो! शुद्धात्मनिधि को प्रगटाया।
जड़द्रव्य-भाव नोकर्मों की, संतति को क्षण में विघटाया॥
जिनवाणी में सम्यक् तत्त्वों का, नित शीतल निर्झर झरता।
निर्ग्रंथ गुरु का शुभ दर्शन, अन्तरमन का कालुष हरता॥
शुभ तीन महानिधियों को पा, रत्नत्रय निधि प्रगटाऊँगा
श्री देवशास्त्र निर्ग्रंथ गुरु की, पूजा नित्य रचाऊँगा॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरु समूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरु समूह! अत्र तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरु समूह! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(परिपुष्पांजलिं क्षिपामि)

क्षीरोदधि से, गंगाजल से, तन को स्नान कराया है।
सम्यक्त्व शुद्धजल से अब तक, आतम को न नहलाया है॥
मिथ्यात्व असंयम भावों की, परिणति से मुक्त करो स्वामिन्।
निर्मल जल चरणों में अर्पित, हमको सम्यक्त्व वरो स्वामिन्॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलम् निर्वपामीति स्वाहा।

अब तक इन्द्रिय विषयों में ही, उपयोग मेरा रमता आया।
स्वामिन्! जड़ के आकर्षण से, चारों गति में भ्रमता आया॥
अब भेदज्ञान का चंदन ले, भवताप मिटाने आया हूँ।
अशरीरी सिद्ध प्रभु जैसी, स्थिरता पाने आया हूँ॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो, संसारताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

भव-भव में पाये पद अनन्त, तृष्णा न शान्त हुई मेरी।
पद पा सोचूँ 'मैं भी कुछ हूँ', यह मिथ्या भ्रान्ति रही मेरी॥
अविनाशी अक्षय पद पाने, अक्षत का अर्घ्य चढ़ाता हूँ।
चैतन्यधाम में रहूँ सदा, नित यही भावना भाता हूँ॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

सुन्दर भोगों के ईंधन से, क्या काम अग्नि बुझ सकती है।
जितना ईंधन डालो इसमें, यह उतनी तेज धधकती है॥
हूँ चिदानंद चिद्रूप शुद्ध, निज ब्रह्मचर्य में वास करुँ।
चरणों में सुमन समर्पित हैं, इस कामभाव का नाश करुँ॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्धात्म असंख्य प्रदेशों से, शमरस के झरने झरते हैं।
पी तृप्त हुआ करते ज्ञानी, जो निज में सदा विचरते हैं॥
मैं क्षुधारोग से पीड़ित हूँ, उपचार कराने आया हूँ।
नैवेद्य समर्पित चरणों में, निज समरस पीने आया हूँ॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्धात्म प्रकाशी ज्ञान दीप, समकित से ज्योतिर्मय होता।
मिथ्यात्व तिमिर के नशते ही, अनुभव शुद्धात्म प्रखर होता॥
निज द्रव्य और गुण पर्यय से, इक क्षण अभेदता प्राप्त करुँ।
ज्योतिर्मय दीप समर्पित है, दर्शन मोहान्ध समाप्त करुँ॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्धात्म तत्त्व में तन्मयता, निश्चय तप आग जलाती है।
तब सहज शुभाशुभ कर्मों की, कालुष उसमें जल जाती है॥
शुभ धूप दशांग चढ़ाता हूँ, मेरी शुध परिणति अन्वय हो।
कर्मों की कालुष जल जाये, शुद्धात्म तत्त्व में तन्मय हो॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्धात्म निराकुल सुख यह फल, शुद्धात्म ध्यान से फलता है।
निज वीतराग की परिणति से, यह मोक्ष महाफल मिलता है॥
अविनाशी ज्ञान शरीरी बन, निज में अनंत बल प्रगटाऊँ।
अर्पित करता फल चरणों में, निर्भार अतीन्द्रिय फल पाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो महामोक्ष-फलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

निज परम पारिणामिक स्वभाव, ज्ञायक होकर प्रगटाया है।
अरिहंत प्रभु की वाणी में, शुद्धात्म सार यह आया है।।
निज परम पारिणामिक स्वभाव, ऐसा अनर्घ्य पद मिल जाये।
शुभ अर्घ्य समर्पित करता हूँ, चेतन गुण बगिया खिल जाये।।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो अनर्घ्य पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दर्शन-ज्ञानोपयोग युगपत, तिहुँकालों सहज प्रवर्त्त रहा।
शुद्धात्म अतीन्द्रिय सुख प्रतिक्षण, नूतन-नूतन अनुवर्त्त रहा॥

सम्पूर्ण द्रव्य-सहभावी-गुण, उनकी क्रमवर्ती-पर्यायें।
परिपूर्ण ज्ञान में प्रतिबिम्बित, सम्बन्ध सहज ज्ञानी गायें॥

अविनाशी अनुपम अचल निधि, "श्री" अन्तरंग में हुई प्रगट।
जब कर्म घातिया नष्ट हुए, थी इनकी भी सामर्थ्य विकट॥

शुद्धात्म ध्यान की ले कुठार, संवर जब-जब आगे आता।
आस्रव के पैर ठिठक जाते, निर्जरा तत्त्व हँसकर जाता॥

शुद्धात्म ध्यान तप की महिमा, प्रभु सहज आपने पाई है।
शुद्धात्म ध्यान मैं भी पाऊँ, मन में प्रभु यही समाई है।।

निज ज्ञायक प्रभु की प्रभुता को, ज्ञायक बनकर ही पाऊँगा।
शुद्धात्म प्रदेशों का अमृत, पीकर अमूर्त प्रगटाऊँगा॥

हूँ चिदानन्द चैतन्यप्रभु, यह बात आपने बतलाई।
शुद्धात्म सार का कथन जहाँ, वह जिनवाणी माँ कहलाई॥

प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, में सार वही।
द्रव्यानुयोग जिसकी महिमा, कहता उसके अनुसार वही॥

स्याद्वादमयी जिनवाणी माँ, जो अनेकान्त को कहती है।
सच कहता प्रभु सच्ची श्रद्धा, मेरे अन्तस में रहती है॥

जिनवाणी माँ को पाकर ही, कलिकाल हुआ मंगल मेरा।
प्रभु आप विदेह विराजे हो, फिर भी सान्निध्य मुझे तेरा॥

जिनवाणी माँ के आश्रय से, निर्ग्रंथ गुरु का दर्शन है।
शुद्धात्मलीन इन श्रमणराज, चरणों का नित स्पर्शन है॥

चैतन्यराज की महिमा को, इन श्रमणराज ने जाना है।
शुद्धात्म सरोवर की निधियाँ, पाना यह मन में ठाना है॥

शुद्धात्म तत्त्व का कथन सार, श्री गुरु मुख से जब झरता है।
मन हिरण आत्म उपवन में तब, नित सहज कुलाँचें भरता है॥

हे तपोमूर्ति! निर्ग्रंथ गुरु, मेरा अन्तरतम दूर करो।
शुद्धात्म तत्त्व को प्राप्त करूँ, मन में भक्ति भरपूर करो॥

हे देव-शास्त्र निर्ग्रंथ गुरु, पूजन में हर्षित अन्तरमन।
सम्यक् 'विमर्श' नित शरण मिले, स्वीकारो बारम्बार नमन॥

ॐ ह्री श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु-पूजा प्रभु ध्यान से, हो निर्मल परिणाम।
स्वर्गादिक सुख भोगकर, मिले मोक्ष निष्काम।।

(परिपुष्पांजलि क्षिपामि)